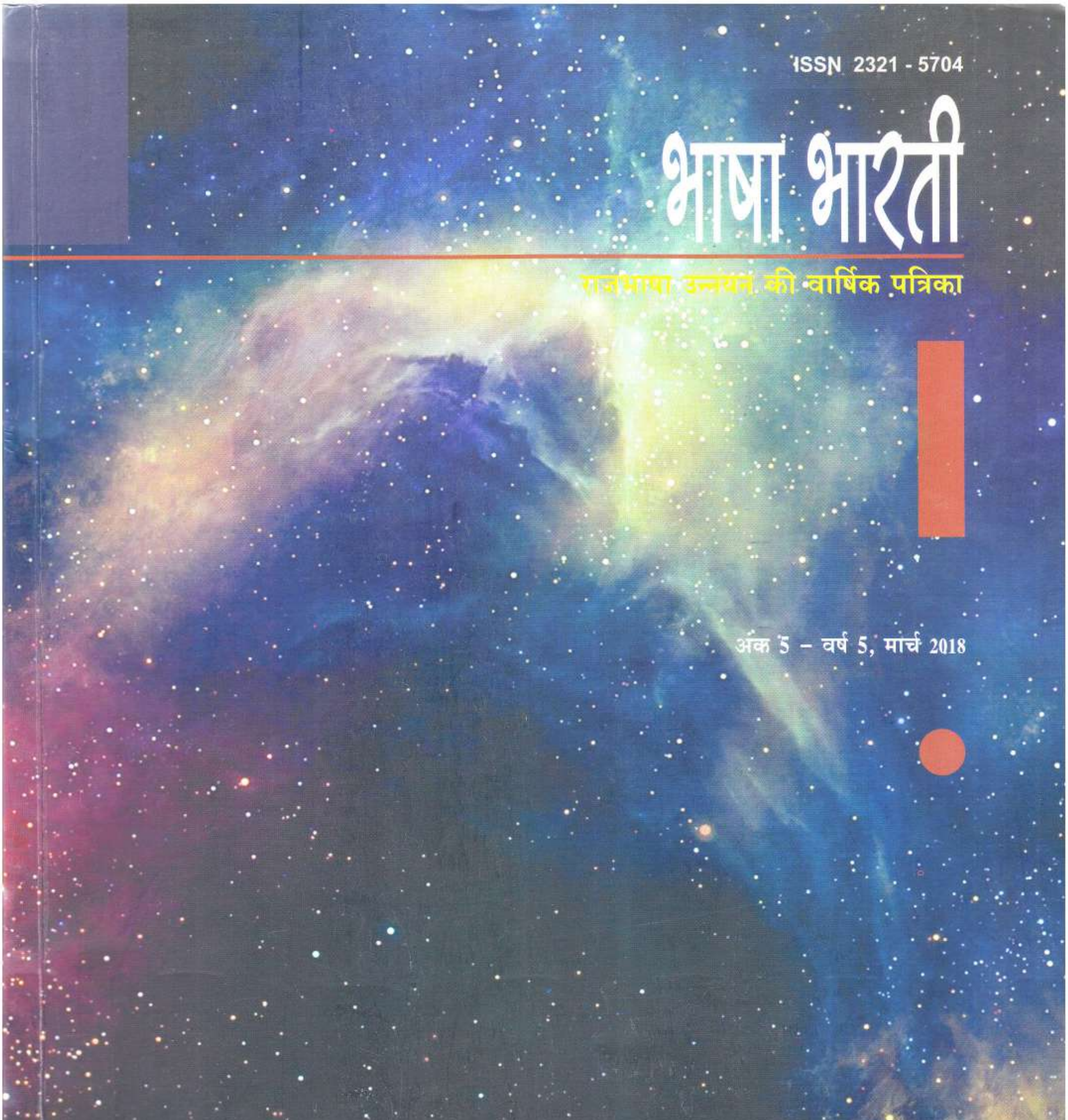

ISSN 2321 - 5704

भाषा भारती

राजभाषा उन्नयन की वार्षिक पत्रिका

अंक 5 – वर्ष 5, मार्च 2018

राजभाषा प्रकोष्ठ
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर

भाषा भारती

राजभाषा उन्नयन क़ी वार्षिक पत्रिका
ISSN 2321 – 5704
वर्ष 5, अंक 5
मार्च, 2018
यू.जी.सी. द्वारा मान्य पत्रिकाओं की सूची (Journal No. - 40712) में सम्मिलित

© *सर्वाधिकार सुरक्षित*

सम्पादकीय पत्र व्यवहार :
हिन्दी अधिकारी, राजभाषा प्रकोष्ठ
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)–470003

दूरभाष : (07582) 265828
ई-मेल : hindicell2015@gmail.com

मूल्य : निःशुल्क आन्तरिक वितरण हेतु
बाहरी व्यक्तियों के लिए 50 रूपये प्रति अंक
संस्थाओं के लिए 100 रूपये प्रति अंक

'भाषा भारती' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार से सम्पादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

शब्द संयोजन
विनोद रजक

मुद्रण
अमन प्रकाशन
कीर्ति स्तंभ के पास, नमक मंडी, कटरा
सागर (म.प्र.) मो. 9826434225

ओड़िया से हिन्दी अनुवाद : समस्याएँ और सम्भावनाएँ 86
अजय कुमार पटनायक

साहित्यानुवाद : अनुकृति या अनुसृजन 93
छबिल कुमार मेहेर

भारत में महिला सशक्तिकरण 108
अनुपमा कौशिक

'पृथ्वी का प्रथम स्नान' : जीवन की वापसी का आग्रह 111
राजेन्द्र यादव

रचनात्मक चिंतन की सूफी ज़मीन 118
आशुतोष

हिन्दी में स्त्री-लेखन के मायने 124
हिमांशु यादव

निर्मला पुतुल की कवितायें : संवेदना एवं शिल्प 128
अरविन्द कुमार

वर्तमान सिनेमा : सफलता, भाषा और शीर्षक 136
पंकज तिवारी

सात कविताएँ 139
पंकज चतुर्वेदी

दो कविताएँ 141
दिनेश अत्रि

सागर से लौटते समय 143
कुमार कृष्ण

तीन कविताएँ 145
नवीन कानगो

समाचार 149
अनुराग श्रीवास्तव

रचनात्मक चिंतन की सूफी ज़मीन

– आशुतोष

किसी भी कलारूप की सार्थकता सौन्दर्य की उपलब्धि में है। कलाजनित सौन्दर्य को परिभाषित करते हुए, निकोलाई गाव्रिलोविच चेर्नीशेव्स्की ने कहा है कि "मानव के लिए सुन्दर वही वस्तु है, जिसमें वह जीवन को, जिस रूप में कि वह उसे समझता है, देखता है। सुन्दर वह वस्तु होती है, जो उसे जीवन की याद दिलाती है।"[1] लीलाधर मंडलोई हमारे समय के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। कविताओं को लेकर वे स्पष्ट हैं। कविता और अपनी संपादकीय टिप्पणियों को लेकर हमेशा वे चर्चा में रहते हैं। किन्तु एक बड़े सरोकारों वाला रचनाकार की चिन्ताएँ अलग-अलग विधाओं में प्रकट होती रहती हैं। उसका एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है, मंडलोई जी की तिथिहीन डायरी 'दिनन दिनन के फेर'। डायरी में छः शीर्षकों में कई तिथि हीन टिप्पणियाँ दर्ज हैं। कवि का डार्करूम, सूर्य के हमजोली, पेड़ और पक्षी, मां और पास-पड़ोस, लोग दुनिया में और यमुना के पुलिन पर जैसे शीर्षकों के अन्तर्गत लगभग 74 टिप्पणियाँ हमारे समय और समाज को बिल्कुल भिन्न तरह से दर्ज करती हैं।

'दिनन दिनन के फेर' और कुछ नहीं मंडलोई की कविता में खाली पड़ी जगहें हैं। जिसको मंडलोई जी ने पूरी रचनात्मक औदात्य दिया है। मंडलोई जी की यह कोशिश डायरी के पारम्परिक शिल्प में बहुत कुछ इजाफा करती है। बल्कि कहें कि इसमें मंडलोई जी का कविता, आलोचना, डायरी में न अटने वाला मन समाया हुआ है। एक तरह की गद्य कविता। एक तरह की कोमल और अधीर प्रार्थना। वही प्रार्थना जो जिसे हमारी दुनिया का आखिरी आदमी अपने सबसे मुश्किल क्षणों में पुरी आत्मीयता और आस्था के साथ करता है। उसी प्रार्थना को मंडलोई जी आत्म-राग में गोहरा रहे हैं।

किताब की पहली ही टिप्पणी 'पुरखों से नाता' में कहते हैं कि "हर कवि का डार्करूम होता है। अपने विचारों की जीन कसे। जिसे वह अकसर भूल जाता है कि बाहर के इतने दबाव। इतने सालों में ठक-ठक की आवाज सुनाई पड़ी।"[2] लेखक अपने उस डार्करूम में झाँकता है और पाता है कि उसमें "मां की लोरियाँ हैं कहावतें और सुक्तियाँ। बुजुर्गों की सीखें और नसीहतें भी और उनके संघर्ष की इबारतें जिन्हें भुलाने का चलन इधर आम।"[3]

भाषा का उत्सव है ये। आत्मा का आत्मविश्वास है। मंडलोई जी जिस सजगता से भाषा को बरतते हैं, उस तरह क्या कोई श्लोक, मंत्र या ऋचा उठाता होगा। भाषा का यह हासिल उनके कवि की

सिद्धि है। यह पूरी जिल्द राग और रोशनी की धागे से बुनी गयी है। इसी लिए मंडलोई जी 'पढ़ने के लिए चाहिए गरीब की आत्मा' शीर्षक में पहले ही आगाह कर देते हैं कि--

"इस गद्य को पढ़ो यह अलिखा है
लेकिन खिला
इसके भीतर खुलने से जो छूटा है उसे अवकाश में पढ़ो
रोशनाई यहां गुप्तलिपि है
जो यहां है वही है मेरा लिखा हुआ
और उसे पढ़ने के लिए चाहिए एक ग़रीब की आत्मा
जिसे लिखते हैं वही लेखक
जिन्हें लेखक की तरह नहीं जानते लोग
क्या आप मुझे जानते हैं?"[4]

मंडलोई जी का यह प्रश्न कि 'क्या आप मुझे जानते हैं,' बड़ा मौजूं है। जाहिर है कि 'दिनन दिनन के फेर' के इस लेखक का यह अंदाज निराला है, अब तक के जाने-पहचाने मंडलोई जी से तो अलग ही है यह छवि। क्योंकि 'दिनन दिनन के फेर' में अब तक की अनसुनी मगर बहुत बुनियादी आवाजें हैं। जिनसे रचनाकार का जातीय जुड़ाव है। इसलिए मंडलोई जी उन्हें आवाज देते हैं -- "मैं पुकारता हूँ वनस्पतियों को। नदियों, पहाड़ों को पुकारता हूँ। मैं धरती को पुकारता हूँ और आसमान को। मैं कुए-तालाबों को पुकारता हूँ और समुद्र को।... खतरों की ज़द में हैं जो भी, उनके लिए मैं पुकारता हूँ।"[5] इन पंक्तियों में मंडलोई की रचनाशीलता के निहितार्थ खुलते हैं। एक लेखक, एक रचनाकार अपनी रचनाओं के मारिफत क्या चाहता है? इस प्रश्न का जबाब मंडलोई अपनी रचनाशीलता से देते हैं। आज जब 'क्रोनिक कैपटिलिज्म' और 'कम्यूनल पोलिटिक्स' का गठजोड़ हो चुका है, मुक्त बाजार व्यवस्था और उदारवादी लोकतंत्र को ही मनुष्यता के समक्ष आखिरी विकल्प के तौर पर पेश किया जा रहा है। ऐसे में पूंजीवादी सत्ताओं और उनकी अनुषंगी सरकारों द्वारा प्रायोजित विकास की आंधी में वनस्पतियाँ, नदियाँ, पहाड़, धरती, आसमान, कुँआ, तालाब, सुमुद्र इन सबका लगातार दोहन हो रहा है। ये सब खतरे की ज़द में हैं, किन्तु अकेले नहीं हैं इनके साथ हमारा रचनाकार खड़ा है। एक श्रेष्ठ रचनाकार से यही उम्मीद भी की जाती है कि वह उनके पक्ष में खड़ा रहे जो अकेले पड़ गए हैं। इस मायने में मंडलोई हमें आश्वस्त करते हैं यह कहते हुए कि 'ख़तरों की ज़द में हैं जो भी, उनके लिए पुकारता हूँ।'

इसी तरह वे 'कविता और कविमन' शीर्षक में कहते हैं कि "मैं अपनी कविता की तरह/अधूरा हूँ। अन्तिम पंक्तियों पर/बिखर गयी स्याही/मैं अपना पूरा होना/खोजता रहता हूँ/दरअसल कविता में अधूरेपन के अहसास ने ही मुझे अब तक लिखने में जिन्दा रखा है।"[6] यही रचनाकार का प्रदेय है। उसने अधूरेपन को भी इतने सकारात्मक पद में तब्दील कर दिया है। यह अधूरापन ही रचना-प्रक्रिया की साधनावस्था है, जिसको मंडलोई जी बड़े शाइस्तगी से उठाते हैं। क्योंकि वे साधक कवि हैं, सिद्ध

नहीं। वैसे भी उन्होंने सिद्ध होना चाहा कब था। रचना की इसी साधनावस्था में उन्होंने यह अर्जित किया कि --

> ''शब्द वरदान हैं
> यदि शब्दों को वापरने में हुई भूल
> वे तबाही मचा सकते हैं।''[7]

लीलाधर मंडलोई के यहाँ यथार्थ की बिल्कुल अलहदा छवि है। वे यथार्थ को कोश से नहीं उसकी अपनी जमीन से पहचानते हैं। वे कहते हैं कि ''मैं मानता हूँ कि हमें सात समुन्दर पार की उड़ान तब भरनी चाहिए, जब हम अपनी धरती के यथार्थ को अपनी समझ भर जान लें।''[8] समकालीन रचनाशीलता में यथार्थ को लेकर कमोवेश यहीं चूक की है। उसने यथार्थ को स्थिर इकाई माना है। जबकि बट्रोल्ट ब्रेख्त कहते थे कि 'चूंकि यथार्थ मनुष्य निर्मित है, इसलिए वह मनुष्यों द्वारा बदला भी जा सकता है।' मंडलोई जी ने अपनी इस तिथिहीन डायरी की तमाम टिप्पणियों में अपने समय और समाज के उसी बदलने हुए यथार्थ को दर्ज को किया है। उनका यथार्थ बहुआयामी है। वह जितना सामाजिक है उतना ही रचनात्मक भी। इसीलिए मंडलोई जी अपनी रचनात्मकता के उद्देश्यों को लेकर भी बहुत स्पष्ट हैं। उनके यहाँ श्रेष्ठ रचना का आशय उसकी सामाजिक भूमिका से है। वे कहते हैं कि ''अगर मेरी कविता में दुख है। और सबका नहीं। मेरे लिखे को आग लगे।''[9] अपनी स्वयं की कविता के लिए यह निर्ममता अद्वितीय है। कविता वही श्रेष्ठ है, जिसमें एक का दुःख-सुख सबका दुःख-सुख बन जाय। यदि ऐसा नहीं है तो 'आग लगे उस लिखे को।' यह कहने के लिए एक अविस्मरणीय साहस की दरकार है। कहना न होगा कि एक रचनाकार में यह साहस साक्षी होने की विनम्र भूमिका से पैदा होता है न कि कर्त्तापन के अहंकार में। यह रचनाकर्म का सत्य है। चेर्नीशेव्स्की कहते थे कि 'सत्य बुद्धिकी उपज नहीं है, वह जीवन की वास्तविकता की देन है।' मंडलोई जी इस सत्य तक पहुँच चुके हैं तो उसका कारण भी बुद्धि नहीं वास्तविकता से रूबरू होता दिल ही है।

मंडलोई जी का अनुभव संसार बड़ा है। वे अपने उस अनुभव संसार के यायावर नहीं नागरिक हैं। उन्होंने अपने उस संसार को अर्जित किया है, पाया नहीं है। इसलिए उनके लहजे में कशिश है और उनकी गुफ्तगू में साफगोई। उनके यहाँ सतपुड़ा के घने जंगल हैं, बड़ा महादेव हैं, पहाड़ हैं, नदियाँ हैं और इन्हीं जैसे सीधे-सादे लोग भी हैं। अपने इस विशेष फितरत के निर्माण के लिए वे नर्मदा नदी के आभारी हैं। वे कहते हैं कि ''मेरा स्वभाव कुछ अलग है। मैं उस दिशा में नहीं भागता जिधर सब। मैं नर्मदा इलाके का हूँ। पूर्वज इसी तट पर जिये। यात्राएँ कीं। उन्होंने सरल मार्ग कभी न चुना।... उनकी गति तेज थी या मन्थर। उसमें चलने का भाव था। स्वभाव के विरुद्ध। वे कहते थे 'नर्मदा माई' भी ऐसी ही हैं। दूसरी नदियाँ पूर्व की ओर बहती हैं तो यह पश्चिम की तरफ़। वह बैगा, गोंड, और भील जैसे संघर्षशील आदिवासियों की माँ हैं। वह स्वभाव में चंचल हैं और उग्र भी। वह गहरी खाईयों खड्डों में कुदती हैं। चट्टानों को तोड़ती हैं। वनों में दौड़ लगाती है, तो कहीं मस्त मन्थर चाल अपना लेती है। कहीं-कहीं दुःख में सूखकर काँटा हो जाती है। पर शक्ति भर चलती रहती है, हर प्रत्याशा के बरक्स अप्रत्याशित जीने के उदाहरणों की कविता है नर्मदा। अगले क्षण कहाँ कौन सी रचना करेगी, नहीं

जानती है। पर वह नया होता है। नर्मदा अपने में रोज नया होने होने को साबित करती है।... क्या मैं नर्मदा का पुत्र, ऐसा हो सकता हूँ अपने स्वभाव और संकल्प में।''[10]

अब यहाँ यह अलग से कहने की आवश्यकता नहीं हैं कि मंडलोई जी की समस्त रचनात्मकता नदी हो जाने की एक महान अभिलाषा ही है। उनकी इस अभिलाषा में सबके लिए जगह है। वे पेड़, पहाड़, झरने, प्रकृति सबकुछ को दर्ज करते चलते हैं। उनके यहाँ सेमल की एक बेहद आत्मीय और उजली स्मृति है, फलों का राजा आम अपने पूरे कुनबे के साथ गरीबों के जीवन में मिठास घोल रहा है, प्रकृति की उदारता का अनुपम देन बेर है, बचपन की मीठी याद बनकर सीताफल उर्फ शरीफा है तो कभी न भूल पाने वाली इमली भी है। मंडलोई जी इन तमाम फलों को इनके अपने प्राकृतिक गुणों के कारण तो याद करते ही हैं, साथ ही इनको याद करने का एक नितान्त मार्मिक कारण भी है कि ''जंगल में आम, जामुन, महुआ, अमरूद, बेर, बेल, आँवला, गूलर, इमली, कठहल, रेठू, सहजन, नीम, बरगद आदि थे। इन्हीं पेड़ों के फलों ने ग़रीबी में साथ दिया।''[11]

मंडलोई जी की जीवन यात्रा एक साहसिक यात्रा है। 'गरबीली गरीबी' से उन्होंने नजर पायी, संघर्षों से पाया ज़िद। पुराने भोपाल से शिरी ज़ुबान पायी तो यारों से पाया विश्वास। नर्मदा ने धारा के उलट चलने का साहस दिया तो सतपुड़ा ने दिया सधुक्कड़ी मिज़ाज। आम, ईमली, बेर, कटहल जैसे देशज बन्धुओं से धैर्य पाया तो पक्षियों से सीखा उड़ान। मंडलोई जी का अन्तस कृतज्ञता के भावों से रचा-बसा है। इसलिए वे अवसर पाते ही अपने होने के समस्त उपादानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। 'दिनन दिनन का फेर' एक तरह से उनका कृतज्ञता ज्ञापन ही तो है। वे 'टूटते पंख और मंजिल' में कहते हैं कि ''यह मेरी कंजूसी है। कोई दबाब भीतरी-बाहरी, कहना मुश्किल। लेकिन मुश्किलों का जबाब भीतरी सतहों में है जिस तक पहुँचना कठिन। हम अपना भीतर कब पूरा कब खोल पाते हैं—शायद कभी नहीं। कितने नसीब के साथ पैदा हुए कौवे और रॉबिन भरपूर उर्जा के बावजूद प्रारम्भिक दशा में अन्धे होते हैं। शक्तिहीन भी। सो दायित्व माँओं का। उनके बल पर ही वे अनेक तरह से मनुष्यत्व के उदाहरण। वे आदिम मूल्यों के पक्ष में व आधुनिक सन्दर्भ को बिसराये बिना एक संसार को देख पा रहे हैं जो हमारे वास्ते कठिन...। अध्ययन के अनुसार पक्षी 8000 मीटर चोटियों को पारकर कई हज़ार मील की यात्रा करते हैं। रास्ते के गर्मी, बारिश, आंधी-तुफान के बीच और यात्रा स्थगित नहीं करते। पंख दुखते हैं। उनके हिस्से टूटते भी हैं, पर यात्रा से अधिक वे अपनी मंजिल पर पहुँचकर ही एक शब्द, एक वाक्य या दो-तीन वाक्य उचारते हैं। रास्ते में शत्रु हैं। प्रतिकूल मौसम है। और वे उदाहरण हैं, अकल्पनीय यात्राओं के। वे मंजिल पर पहुँचना जानते हैं।''[12] यहाँ देखा जा सकता है कि मंडलोई जी के लिए वरेण्य क्या है। उनकी निगाह में वे पक्षी हैं, जो प्रतिकुल परिस्थितियों यात्राएँ करते हैं। थकते हैं मगर मंजिल पर पहुँचने से पहले हारते नहीं। क्या इस तरह की यात्रा की उम्मीद हम एक रचनाकार से नहीं कर सकते। क्या यह यात्रा एक कवि की यात्रा नहीं है? क्या ऐसी ही यात्रा स्वयं मंडलोई जी की नहीं रही है? जीवन का भी और सृजन का भी।

मंडलोई जी सबकुछ को याद रखते हैं। बातें तो वे भूलती हैं, जिन्हें हम भूलना चाहते हैं। हमारी भाषा का यह आदिवासी लेखक अपने होने की बुनियाद को अपनी आँख की कोर में बसाये हुए

है। अपने जीवन के उन बावले दिनों को याद करते हुए, मंडलोई जी कहते हैं-- ''माँ का सोचना बहुत हतप्रभ करता था। मैंने पूछा कि बाबा बार-बार एक ही पद दोहराते थे-- कितनो बुरो समैया आओ, भटा-भात भी खा नैं पाओ, माँ ने कहा--हाँ। समय बहुत बुरा है। कोई बात नहीं। लो मैंने इसे आटे की लोई में गूंथ लिया, अब देखो इसका बुरा हिस्सा बन्द हो गया। अब जब लोई रोटी बनकर फूलेंगी और तुम खाओगे तो बुरा समय तुम्हारे भीतर उतरकर खो जाएगा। और तुम बुरे समय को हरा दोगे। मैंने और लोगों की तरह शायद यही किया और अब भी कर रहा हूँ। माँ संकोच के साथ कह रहा हूँ वह रोटी नहीं तुम ही थीं, जो मेरे भीतर बुरे समय को पछाड़ रही थी।''[13] हिन्दी में माँ को लेकर श्रेष्ठ कविताएँ लिखी गयीं हैं और पिता पर श्रेष्ठ कहानियाँ। किन्तु मंडलोई जी द्वारा माँ पर लिखी यह टिप्पणी महावाक्य की तरह है। माँ पर लिखते समय भावुक या 'नास्टेलजिक' होने की पूरी संभावना रहती है। किन्तु मंडलोई जी ऐसे प्रसंगों में भी 'नास्टेलजिक' नहीं होते बल्कि दुःख को भी ताकत बना लेते हैं। चर्चित शायर मुनव्वर राणा अपने एक शेर में कहते हैं कि मां के सामने रोना नहीं चाहिए क्योंकि 'जहाँ बुनियाद हो वहाँ नमी अच्छी नहीं होती।' मंडलोई जी माँ के साथ ही जीजी को भी याद करते हुए कहते हैं कि ''मेरी जीजी एक रोज उड़ने की इच्छा के बगैर, उड़ी और जा बैठी पराये आँगन में।''[14] माँ और जीजी पर लिखी इन टिप्पणियों में भारतीय पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में औरत मात्र की जिन्दगी का दर्द दर्ज हैं। वे स्त्री होने को जानते और मानते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि ''मैं कुछ नहीं कहता। एक शब्द नहीं। तिस पर वो पढ़ लेती है मन का कहा सब। प्रेम तो बिना चूक और दुःख के रास्ते बहती पीड़ा। जैसे मुझे नहीं, उसे पता हो मेरा अर्न्तमन। यह कौन-सी भाषा है, भाषा से परे। शब्दातीत। मैं यह सब लिखने में कितना असहाय-असफल। यह उसका प्रेम जानता है। मैं उसे कितना कम जानता हूँ। मैं अन्ततः एक पुरुष हूँ। एक पुरुष होना एक स्त्री होना नहीं।''[15]

इस पूरी ज़िल्द में आत्मा की आहटे हैं। जिन तक पहुँचने के लिए केवल भाषा से दोस्ती नहीं बल्कि मन का उजास भी चाहिए। यह अब तक का गैर पारम्परिक लेखन है। मंडलोई जी ने इसे तिथिहीन डायरी कहा है। किन्तु यह हिन्दी में अब तक हासिल की गयी विधाओं की संरचना में न समाने वाला बिल्कुल नई सी बात है। डायरी, कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, संस्मरण, रिपोतार्ज आदि विधाओं से भिन्न उनकी ही सरहद पर उगता हुआ सृजन का एक नया देश है। भाषा की साफगोई और हिन्दुस्तानी ज़ुबान की ठाठ ने इसे किसी सूफी कलाम सी दौलत बक्शी है। जिसके दम पर 'दिनन दिनन के फेर' में दर्ज टिप्पणियाँ गद्य की शुष्क इबारत से आगे बढ़कर कहीं द्रुत तो कहीं विलम्बित अलाप की उँचाई हासिल कर ली हैं। जिन्हें पढ़ना गरीबी की आँच में तपाये हुए सुख को अंकवार भर भेंटना है।

असिस्टेण्ट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सन्दर्भ -

1. *दर्शन साहित्य ओर आलोचना, अनुवाद नरोत्तम नागर, परिकलपना प्रकाशन, लखनऊ, 2002, पृ. 173*
2. *मंडलोई लीलाधर, दिनन दिनन के फेर, साहितय भंडार, इलाहाबाद, 2015, पृ. 13*
3. *वही, पृ.13*
4. *वही, पृ. आमुख*
5. *वही, पृ.15*
6. *वही, पृ.16*
7. *वही, पृ.16*
8. *वही, पृ.17*
9. *वही, पृ.18*
10. *वही, पृ.48*
11. *वही, पृ.61*
12. *वही, पृ.75*
13. *वही, पृ.79*
14. *वही, पृ.89*
15. *वही, पृ.116*